जिसने आत्मा को पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है, प्रत्येक पर्याय में शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। विविध शुभभाव आयें, तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता और वे भाव मुख्यता नहीं पाते।

मुनिराज को पंचाचार, व्रत, नियम, जिनभक्ति इत्यादि सर्व शुभभावों के समय भेदज्ञान की धारा, स्वरूप की शुद्ध चारित्रदशा निरन्तर चलती ही रहती है। शुभभाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचा का ऊँचा ही—ऊर्ध्व ही—रहता है। सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है॥३६६॥

वचनामृत, ३६६। **जिसने आत्मा को पहिचाना है,...** पहली बात तो यह है कि आत्मा का ज्ञान प्रथम होना चाहिए, पीछे सब बात। आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप शुद्ध नित्यानन्द, उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव होना चाहिए। पहली... आहाहा! **जिसने**

आत्मा को पहिचाना... कि मैं तो ज्ञान और आनन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ। ऐसी उसको आत्मा को पहिचान होती है, अनुभव किया है, पहिचाना है तो अनुभव भी किया है कि आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वभाव (है)। उसका अनुभव, आनन्द का अनुभव सम्यग्दर्शन होने पर (हुआ है)। धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की प्रथम शुरुआत, उसमें पहले पहिचान कर अनुभव किया। आहाहा! थोड़ा कठिन है।

सर्व प्रथम यह करने का है। देह से तो भिन्न है परन्तु दया, दान, पुण्य-पाप के भाव, उससे भी यह चैतन्य भगवान ज्ञायकभाव भिन्न है। आहाहा! उसका जब पहले ज्ञान हो, तब उसका अनुभव होता है। यह आत्मा जैसा है, ऐसा ख्याल में आता है, तब उसका अनुभव होता है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! **उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है,...** अधिकार बहुत अच्छा आया है। मूल अधिकार है। **जिसने आत्मा को पहिचाना है, अनुभव किया है, उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है,...** कोई भी क्रियाकाण्ड जगत का हो, शरीर, वाणी, मन का या शुभाशुभ भाव हो, फिर भी आत्मा ही दृष्टि में समीप वर्तता है। आहाहा! ऐसी कठिन बात।

उसको आत्मा ही... 'ही' शब्द है न? आत्मा ही। आत्मा ही मुख्य वर्तता है। प्रत्येक प्रसंग में आत्मा का ज्ञान हुआ है तो आत्मा ही प्रत्येक प्रसंग में मुख्य वर्तता है। आहाहा! आत्मा को छोड़कर कभी ज्ञानी की दृष्टि पर ऊपर नहीं जाती। पर होता है, उसको जानते हैं, परन्तु दृष्टि का ध्येय जो ध्रुव आया है, उसमें से हटते नहीं। आहाहा! ऐसी धर्म की बात। **उसको आत्मा ही सदा समीप वर्तता है, प्रत्येक पर्याय में...** आत्मा की प्रत्येक अवस्था में-कोई भी अवस्था हो - शुभ हो या अशुभ हो, परन्तु **शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है।** कोई भी पर्याय में-अवस्था में आत्मा ही मुख्य वर्तता है। पर्याय की मुख्यता कभी नहीं होती। आहाहा! यह बात!

.... उस अवस्था की मुख्यता कभी नहीं होती। दृष्टि में आत्मा की पहिचान हुई और अनुभव हुआ तो आत्मा ही सदा प्रथम मुख्य वर्तता है। आहाहा! ऐसी बात। (अज्ञानी) कहे, यह करो, यह करो, यह करो।.... आत्मा क्या चीज़ है, वह कुछ नहीं। आहाहा! अनन्त काल हुआ।

अनन्त कालथी अथडयो, विना भान भगवान,
सेव्या नहि गुरु संत ने, मूक्या नहि अभिमान॥

आहाहा! अपना स्वरूप ज्ञान और आनन्दस्वरूप त्रिकाली प्रभु, उसकी प्रथम दृष्टि हुई और अनुभव में पहिचाना... आहाहा! उसकी प्रत्येक पर्याय में, प्रत्येक अवस्था की दशा में आत्मा की मुख्यता वर्तती है। पर्याय की मुख्यता वर्तती नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? पर्याय में अनेक अवस्था होती है, फिर भी धर्मी जीव की-आत्मा के अनुभवी की दृष्टि में से आत्मा त्रिकाल नहीं हटता। दृष्टि में आत्मा ही मुख्य वर्तता है। आहाहा!

विविध शुभभाव आयें, तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता... आहाहा! कहते हैं कि शुभभाव आयें, दया का, भक्ति का, पूजा का भाव धर्मी को भी आये, विविध प्रकार के शुभभाव आयें। एक प्रकार का नहीं, अनेक प्रकार के। दया, दन, व्रत, भक्ति, पूजा (आदि)। **शुभभाव आयें, तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता...** शुभभाव के काल में भी धर्मी को त्रिकाली आत्मा विस्मृत नहीं होता। आहाहा! यह भाषा पहले तो समझनी कठिन पड़े। ऐसा मार्ग! कभी सुना नहीं, कभी किया नहीं। आहाहा!

जिसने आत्मा की मुख्यता (की), यह मुख्य वस्तु भगवान आत्मा ही मुख्य वस्तु है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव आता है, फिर भी उस समय भी आत्मा जो मुख्य वस्तु है, उसकी मुख्य नहीं हटती, पर्याय की मुख्यता नहीं होती। द्रव्य की जो द्रव्यदृष्टि हुई है, उसकी मुख्यता रहती है। कठिन बात है। आहाहा! कुछ करना या छोड़ना कहे तो ठीक लगे। क्योंकि अज्ञान में वह अनादि का अभ्यास है। यहाँ तो कहते हैं, करना तो कुछ नहीं है, परन्तु कदाचित् शुभाशुभ परिणाम आवे, उस समय भी शुद्धात्मा की मुख्यता दृष्टि में से हटती नहीं। आहाहा!

दृष्टान्त दिया था न? माँ और बेटी भीड़ में चले जाते हों। उसमें बेटी से माँ की अंगुली छूट गयी और अकेली रह गयी और भीड़ में आगे निकल गयी। पुलिस ने देखा कि यह लड़की अकेली है, उसकी माँ (नहीं है)। उसे पूछे... यह हमने प्रत्यक्ष देखा हे, पोरबन्दर में। चौमासा पोरबन्दर में था। उपाश्रय के पास ही लड़की गुम हो गयी। उसकी माँ आगे चली गयी तो गुम गई। ख्याल नहीं रहा। पुलिस आयी। पुलिस ने पूछा, तू कौन

है ? मेरी माँ। नाम क्या है ? मेरी माँ। तेरी सहेल कौन है ? उस पर से गली ढूँढ़कर वहाँ ले जा सके। तेरी गली कौन-सी है ? मेरी माँ। एक ही (बात), मेरी माँ, मेरी माँ। आहाहा!

ऐसे धर्मी को सब प्रसंग में प्रभु मेरा आत्मा शुद्ध अन्दर जो मुख्य अनुभव में आया, उसकी मुख्यता हमेशा रहती है। आहाहा!

विविध शुभभाव आयें... विविध अर्थात् अनेक प्रकार के। भक्ति का, नाम भगवान स्मरण, णमो अरिहंताणं आदि आयें। परन्तु उस समय भी आत्मा जो दृष्टि में शुद्ध अनुभव में आया और आत्मा को जो पहिचाना है, उसकी विस्मृति नहीं होती। शुभभाव अनेक प्रकार के आते हैं, उस समय भी आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि है, उसकी विस्मृति नहीं होती। आहाहा! ऐसा मार्ग। भभूतमलजी! पैसे में कुछ सूझे, ऐसा नहीं है। धूल में। **विविध शुभभाव आयें...** विविध अर्थात् अनेक प्रकार। दया का, दान का, स्मरण का, वाँचन का, समझाना, ऐसे विविध शुभभाव आयें। फिर भी **शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता...** शुद्धात्मा त्रिकाली जो है, वह जो दृष्टि में आया है, वह विस्मृत (नहीं हो जाता), उसे भूल जाए—ऐसा नहीं होता। आहाहा! प्रवीणभाई! यह कभी सुना नहीं। पैसे इकट्ठे किये करोड़ों। करोड़ोंपति। धूल-धूलपति। आहाहा!

मुमुक्षु :- ....

पूज्य गुरुदेवश्री :- करोड़ अर्थात् धूल। करोड़ का अर्थ धूल है - पैसा। आहाहा! जगत की मिट्टी है। यह तो अभी नोट आ गयी, पहले नगद रुपया था। अब नोट आ गया। परन्तु वह नोट भी पुद्गल-धूल है। पैसा, सोने का... क्या कहते हैं ? गुल्ली। आपके नाम भूल जाते हैं। सोने की गुल्ली हो तो भी धूल-मिट्टी है। अरे..! मणि रत्न हो लाख रुपये का, तो भी वह धूल-मिट्टी है। दुनिया ने उसकी कीमत की है। उसमें कोई कीमत-वीमत नहीं है। आहा..!

प्रभु आत्मा में तो कीमत है। आहा..! अनन्त ज्ञान। ज्ञान तो हो परन्तु वह ज्ञान भी अनन्त है। जिस ज्ञान का अन्त नहीं, इतनी ज्ञान की शक्ति है। ऐसे श्रद्धा है, वह शक्ति भी अनन्त है। आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में है, वह भी अनन्त—अन्त नहीं, इतना अनन्त है। ऐसे आत्मा को पहिचाना तो वह और विविध प्रकार के शुभभाव हों, शुभभाव

हो, अशुभ को एक ओर रखो। हिंसा, झूठ, विषयभोग वह तो अकेला पाप है। परन्तु विविध प्रकार के-अनेक प्रकार के शुभभाव आयें, **तब कहीं शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता...** आहाहा! शुद्ध भगवान पवित्र आनन्दनाथ, जो अनुभव में, पहिचान में, ज्ञान में आया, उसकी कभी कोई प्रसंग में विस्मृति नहीं होती। आहा...!

और वे भाव मुख्यता नहीं पाते। क्या कहते हैं? कि धर्मी को जो शुभभाव आते हैं, परन्तु वह मुख्यता नहीं पाते। मुख्यता तो ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा है, उसकी मुख्यता धर्मी को कभी छूटता नहीं। शुभभाव के समय भी शुभभाव की मुख्यता नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात। **शुद्धात्मा विस्मृत नहीं हो जाता...** विविध प्रकार का भाव-भक्ति, पूजा में दिखे, समकिती बाहर शुभभाव में उत्साहित दिखे, फिर भी वहाँ जो त्रिकाली ज्ञायकभाव पहिचान में, अनुभव में आया, वह कभी विस्मृत नहीं होता अथवा उसकी कभी गौणता नहीं हो जाती। शुभभाव बहुत ऊँचा आये तो उसकी मुख्यता हो जाए और स्वभाव की गौणता हो जाए, ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! **नहीं हो जाता और वे भाव मुख्यता नहीं पाते।** शुभभाव मुख्यता को प्राप्त नहीं होते। शुभभाव आवे, धर्मी को भी आत्मधर्म प्राप्त किया है, उसको शुभभाव आता है, परन्तु वह शुभभाव मुख्यता नहीं पाते, उसकी मुख्यता कभी नहीं होता, शुभभाव तो गौण हो जाता है और त्रिकाली ज्ञायक जो जानने में आया, उसकी मुख्यता रहती है। अरे..! ऐसा धर्म कैसा? आहा..! दुनिया में ऐसी बात सुनने मिलीन मुश्किल। उसमें यह मुख्यता और गौणता...

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- अन्तर देखते हैं, अन्तर। ज्ञान में जो वस्तु ज्ञेयरूप से ज्ञात हुई, वह कभी हटती नहीं। ज्ञान में, यह मेरी माँ है, यह जनेता है, ऐसा ख्याल में आया तो चाहे जितनी स्त्रियों को देखे तो भी कोई स्त्री की मुख्यता नहीं हो जाती, माँ की मुख्यता रहती है। आहाहा! समझ में आया?

उसी प्रकार धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जिसे शुभादि भाव तो अनेक प्रकार के होते हैं, फिर भी उसकी मुख्यता—चैतन्य ज्ञायकस्वभाव की मुख्यता नहीं हटती और शुभभाव की मुख्यता नहीं होती। आहाहा! भाषा तो सादी है, परन्तु भाव बहुत गहरा है,

भाई ! आहाहा ! अरे.. ! अनन्त काल में कभी कोई दरकार नहीं की। बाहर की माथापच्ची कर-करके मर गया। एक तो संसार की प्रवृत्ति पाप के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। वहाँ से छूटकर यहाँ आये तो कहे, दया, दान, पुण्य, शुभभाव की क्रिया में अटक जाए। मूल चीज़ रह गयी। मूल चीज़ दृष्टि में आये बिना जन्म-मरण का कभी अन्त आता नहीं। वही कहते हैं।

अनेक शुभभाव आते हैं, परन्तु वह भाव मुख्यता नहीं पाते। है ? मुख्यता तो चैतन्य शुद्ध ध्रुव शुद्ध चैतन्य, उसकी अन्तर में से मुख्यता, प्रधानता, अग्रेसरता, अग्रता नहीं जाती और कोई शुभभाव मुख्य हो जाए, ऐसा होता नहीं। आहाहा !

मुनिराज को... अब मुनिराज की परिभाषा करते हैं। **पंचाचार,...** आहाहा ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य-पाँच आचार। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य। ये पाँच आचार हो, पंच महाव्रत हो-व्रत, कोई नियम लिया हो कि अमुक जगह... आहा.. ! आता है न, उस प्रकार का नियम ? ऐसी साड़ी पहनी हो, ऐसा ... हो, और वह लड्डू खाती हो, तो ही मुझे उसके हाथ से लेना है, नहीं तो नहीं लेना है। ऐसा नियम भी लेते हैं। फिर भी उस नियम काल में भी आत्मा की मुख्यता नहीं हटती। आहाहा ! है ?

नियम, जिनभक्ति... वीतराग की भक्ति करते हैं। **इत्यादि सर्व शुभभावों के समय भेदज्ञान की धारा,...** आहाहा ! उस सब भाव के काल में भेदज्ञान की धारा अर्थात् शुभभाव राग है, भगवान आत्मा वीतरागी आनन्द है, ऐसा भेदज्ञान-दो का पृथक् ज्ञान कभी भूल नहीं जाते। आहाहा ! यह कैसी बात ? अनन्त काल हुआ, अनन्त काल हुआ, उसने कभी सत्य बात खोजी नहीं। असत्य में सन्तुष्ट हो गया, जीवन चला जाता है और चौरासी के अवतार, कौआ, कुत्ता, सूकर, चींटी, कुंजर, हाथी ऐसे अवतार कर-करके मर गया और मरकर माँस आदि खाता हो, सिंह, बाघ फिर मरकर नरक में जाए। आहाहा !

अरे... ! भगवान आत्मा अन्दर मुख्य चीज़ है, उसको पहिचाने, तब तो शुभभाव के समय भेदज्ञान की धारा तो चलती है। क्या कहते हैं ? भक्ति चलती हो, भाव आता है, उत्साह, उल्लास भक्ति में दिखता है ज्ञानी को, फिर भी भेदज्ञान की धारा-शुभ से मैं भिन्न हूँ, यह बात भूलाती नहीं। भेदज्ञान का कभी नाश नहीं होता। कोई भी प्रसंग में हो।

आहाहा! रागादि के प्रसंग में, भक्ति में हो, राग से भिन्न जो भेदज्ञान हुआ है, उसे वह भूलता नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश।

अनन्त काल हुआ, अनन्त भव किये, कभी आत्मा क्या चीज़ है, वह सुनने में आया, फिर भी उस ओर रुचि, अनुभव किया नहीं। आहा..! बाकी क्रियाकाण्ड तो इतने किये कि नौवीं ग्रैवेयक चला जाए, परन्तु एक भव कम नहीं हो। आत्मा के अनुभव बिना भव कम नहीं होता तीन काल में। आहा..!

जिनभक्ति इत्यादि सर्व शुभभावों के समय भेदज्ञान की धारा,... अर्थात् यह राग है और मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसी **भेदज्ञान की धारा, स्वरूप की शुद्ध चारित्रदशा निरन्तर चलती ही रहती है।** आहाहा! राग से भिन्न चलती है और शुद्ध चारित्रदशा। मुनिराज, सच्चे मुनि नग्न मुनि दिगम्बर मुनि होते हैं। जंगल में बसते हैं। आहाहा! उनको चारित्रदशा में निरन्तर चलती रहती है। शुद्ध चारित्रदशा में भी भेदज्ञान निरन्तर वर्तता है। आहाहा! भाषा... ये तो बहिन रात को बोले होंगे तो किसी बहिनों ने लिख लिया होगा। यह तो अन्दर की बातें हैं। आहाहा!

शुभभाव नीचे ही रहते हैं;... धर्मी को शुभभाव आता है-दया, दान, भक्ति, पूजा परन्तु आत्मा के मुख्य भाव से यह शुभभाव नीचे रहते हैं। वह अधिकपना नहीं पाते। आहाहा! समझ में आया? बात तो निकट है, है तो निकट-समीप, परन्तु कठिन है। पुरुषार्थ अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। वह कभी किया नहीं और बाहर में जिन्दगी चली गयी। आहाहा! पशु तुल्य अवतार। पशु जैसे मजदूरी करे, वैसे यह भी पूरा दिन राग और पुण्य-पाप, राग की मजदूरी करता है। आहाहा! अपने आत्मा की कीमत नहीं की। राग के विकल्प से भिन्न प्रभु, उसको जिसने जाना नहीं.. आहाहा! उसने कुछ किया नहीं। और उसने जाना (तो) उसे चारित्र (दशा में) निरन्तर चलता रहता है, भेदज्ञान हमेशा रहता है। मुनि को चारित्र-स्वरूप की रमणता में भक्ति आदि का राग आता है, परन्तु भेदज्ञान अन्दर से भिन्नता हमेशा चालू रहती है। आहाहा!!

सेठ का नौकर पूरा दिन काम करे, सेठ के नाम से। फिर भी अन्दर में जानता है कि यह सब धन्धा और फल सेठ का है। वह कभी भूलता नहीं। राणपुर में ऐसा बना था।

नौकर होशियार था। नौकर का काम करता था। बड़ी दुकान थी। सेठ बैठे, आये परन्तु सेठ के दिमाग का ठिकाना नहीं था। इसलिए बीच में कुछ बोले जाए तो नौकर कहे, घर चले जाओ। और नौकर की छाप भी ऐसी थी। आपका काम नहीं है। व्यापार-धन्धें में कैसे बोलना, कैसे करना आपको मालूम नहीं। चला जाए। सेठ को नौकर पर इतना विश्वास था। उसकी मुख्यता उसे कभी छूटती नहीं। फिर भी उसके हृदय में, इस व्यापार का फल मुझे नहीं मिलनेवाला है, फल तो सेठ को मिलेगा। आहाहा! ऐसा बना है। सेठ था, वह दुकान पर आये और बराबर बोले नहीं, (तो नौकर कहे), आप कुछ मत बोलना। घर चले जाओ। चला जाए। इतना उसे नौकर पर बहुमान था। आदमी ऐसा था। मुझे दूसरा कहना है कि नौकर भले सेठ के बहाने सब काम करे, परन्तु अन्तर में जानता है कि फायदे-नुकसान का व्यापार सेठ का है। मेरा नहीं है। मुझे तो जो मेरी नौकरी है, वह नौकरी है। आहाहा!

वैसे यहाँ शुभभाव के काल में भी आत्मा जानता है कि मैं तो आत्मा हूँ। यह शुभभाव मैं नहीं। आता है अशुभ से बचने को, परन्तु वह शुभभाव दया, दान, भक्ति मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! **शुभभाव नीचे ही रहते हैं;...** शुद्ध शुद्ध आत्मा की मुख्यता में चैतन्य ज्ञायकस्वभाव, उसकी मुख्यता में शुभभाव भी गौण रहता है, नीचे रहते हैं, उसको अधिकता नहीं मिलती। अधिकपना तो शुभ से भिन्न आत्मा है, आनन्द और ज्ञान को अधिकता देते हैं। आहाहा! अरे रे... ! ऐसी बातें कैसी! वीतराग की बात ऐसी है। तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र देव अनन्त तीर्थंकरों का यह वजन है। बहिन तो वहाँ महाविदेह में थी, वहाँ से आयी हैं। आहाहा! प्रभु के पास थी। सेठ के पुत्र थे। वहाँ से सीधा ग्रहण किया, सुना हुआ। थोड़ी भूल हो गयी तो यहाँ काठियावाड़ में अवतार हो गया। यह उनके वचन हैं। रात को बहिनों के बीच बोले होंगे। बहिनों ने लिख लिया। आहाहा!

कहते हैं,... आहा..! **शुभभाव नीचे ही रहते हैं;...** आत्मा पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव से भिन्न शुद्धभाव, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा यह शुभभाव, रागभाव है। परन्तु उससे भिन्न आत्मा का शुद्धभाव राग बिना का भाव, उस राग बिना के भाव की मुख्यता से राग आता है, उसकी मुख्यता कभी नहीं होती। राग आता है परन्तु उसकी मुख्यता कभी नहीं होती। आहाहा! ऐसा कैसा यह? ऐसा मार्ग है, प्रभु! जन्म-मरण रहित

होने का और आत्मज्ञान का मार्ग कोई अलौकिक है! अभी बहुत फेरफार हो गया है। आहाहा! थोड़े शब्दों में कितना भरा है! आहा..!

शुभभाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचा का ऊँचा ही—ऊर्ध्व ही—रहता है। ऊँचा अर्थात् राग की महत्ता, महिमा नहीं आती। महिमा तो चिदानन्द, राग से भिन्न आत्मा की महिमा है, वह महिमा कभी हटती नहीं। आहाहा! **ऊर्ध्व ही—रहता है।** भगवान का स्वभाव आत्मा जिसने जाना है, उसको तो अन्तर में आत्मा मुख्य ही रहता है। आहाहा! **सब कुछ पीछे रह जाता है,...** तीर्थंकर गोत्र का भाव कदाचित् आवे तो भी उसकी मुख्यता नहीं होती, क्योंकि वह विकल्प और राग है। जिससे बन्धन हो, वह राग है। आहाहा! और आत्मा का स्वभाव रागरहित शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द प्रभु, उसकी दृष्टि हुई, उसकी मुख्यता कभी जाती नहीं। **सब कुछ पीछे रह जाता है,...** आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी है। आज श्वेताम्बर पर्यूषण है न? आज श्वेताम्बर का, कल से स्थानकवासी के। अपने आयेंगे पंचमी से। रविवार, पंचमी, भाद्रपद पंचमी से चतुर्दशी तक। आहा..!

सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है। दृष्टि में तो आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु,.. आहाहा! शुद्ध आत्मा पवित्र, पुण्य और पाप के मलिन भाव से भिन्न, उसकी मुख्यता दृष्टि में आती है, वह कभी हटती नहीं। आहाहा! उसका नाम धर्मी और धर्म कहते हैं। अरे रे! ३६६ हुआ न? **आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है।** कोई भी पर्याय, ज्ञानी अशुभभाव में भी आ जाते हैं। आहा...! फिर भी आत्मा जो आनन्दस्वरूप है, उसी मुख्यता नहीं जाती। कमजोरी से पर्याय में कोई राग आता है। लड़ाई का (भाव) भी समकिती को आ जाता है।

भरत और बाहुबली, दोनों भाई। ऋषभदेव भगवान के दो पुत्र। समकिती आत्मज्ञानी (थे), दोनों लड़ाई में आ गये। परन्तु वह भाव हो, उसमें आत्मा की अन्दर मुख्यता है, उस मुख्यता की कभी गौणता नहीं होती। आहाहा! अरेरे..! लाखों का व्यापार करते हों, करोड़ों का धन्धा हो, परन्तु धर्मी कि जिसने आत्मा जाना है, उसको कभी उसकी मुख्यता नहीं रहती—करोड़ों की कमाई एक दिन की हो, एक दिन में करोड़ों की, फिर भी समकिती-धर्मी-समकिती धर्म की प्रथम सीढ़ीवाला, उसे आत्मा की मुख्यता हटकर पैसे की मुख्यता कभी आती नहीं। अरे रे..! ऐसी बातें है, प्रभु! अरे...! जिन्दगी चली जाती

है। क्षण में देह चला जाएगा। यह भाव समझा नहीं और आत्मा का कुछ किया नहीं तो परिभ्रमण मिटेगा नहीं। चौरासी के अवतार... आहाहा! अनन्त काल से किये हैं, वह करते रहता है।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! चाहे जितने शुभाशुभभाव हो, धर्मी को शुद्धात्मद्रव्य की मुख्यता हमेशा रहती है। समझ में आया? आहाहा! यह धर्मी का लक्षण। ऐसी क्रिया करे, फलाना करे, ढिकना करे वह कोई धर्मी का लक्षण नहीं है। आहाहा! ३६६ हुआ न?

पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, उत्तम कुल और सत्य धर्म का श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है। ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणी के श्रवण का योग अनन्त काल में महापुण्योदय से प्राप्त होता है। इसलिए प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ करो। सब सुयोग प्राप्त हो गया है, उसका लाभ ले लो। सावधान होकर शुद्धात्मा को पहिचानकर भवभ्रमण का अन्त लाओ॥३६८॥

३६८। किसी ने लिखा है कि यह पढ़ना। **पंचेन्द्रियपना,...** यह पंचेन्द्रियपना मिला। पाँच इन्द्रियाँ। काया, जीभ, नाक, आँख और कान। पाँच। **मनुष्यपना, उत्तम कुल और सत्य धर्म का श्रवण...** सत्य बात का श्रवण। बापू! धर्म के नाम पर अनेक प्ररूपणा चलती है, वह धर्म के नाम पर झूठी (है)। सत्य धर्म की प्ररूपणा श्रवण मिलनी, वह महा पुण्य का उदय हो तो (मिलता है)। आहाहा! परमात्मा का पूर्वापर विरोधरहित श्रवण, ऐसी बात... आहाहा! **धर्म का श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है।** पहले तो पंचेन्द्रियपना दुर्लभ (है)। आहाहा! कहा था न? शास्त्र में लेख है। निगोद के जीव अनन्त हैं, उसमें अनन्त काल से पड़े हैं। उसमें से लट हो, लट... लट, तो भी छहढाला में ऐसा है कि उसमें से लट हो तो भी चिन्तामणि प्राप्त हुआ। अनन्त काल से निगोद में जीव पड़े हैं और अनन्त पड़े हैं, वे कभी त्रस नहीं हुए हैं। मनुष्य तो हुए नहीं। आहाहा! निगोद में से निकलकर त्रसपना प्राप्त करना, त्रसपना लट, चींटी। उसे भी शास्त्र में-छहढाला में एक चिन्तामणि गिना है।

मुमुक्षु :- दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय सही त्रसतणी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वह। उन्हें कण्ठस्थ है। आहाहा!

वैसे यह मनुष्यपना, पंचेन्द्रियपना, आहाहा! उत्तम कुल और सत्य धर्म का श्रवण, एक के बाद एक दुर्लभ है। आहाहा! पैसे मिलना या पुत्र-पुत्री मिलने दुर्लभ नहीं है। वह तो अनन्त बार मिले और गये और नरक में चला गया। आहाहा! अरबोंपति अनन्त बार हुआ। मरकर नरक में चला गया। आहाहा! या तो निगोद में चला गया। तत्त्व का विरोध किया हो और तत्त्वदृष्टि की खबर नहीं हो और तत्त्व से विरुद्ध हो जाए, वह मरकर निगोद में जाता है। प्याज, लहसुन अथवा काई, पानी में काई होती है। एक कण में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। आहाहा! ऐसे अनन्त भव किये। उसमें यह उत्तरोत्तर दुर्लभ है। आहाहा..!

ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणी के श्रवण का योग अनन्त काल में महापुण्योदय से प्राप्त होता है। सत्य श्रवण और सत्य धर्म का योग। आहाहा! महा **पुरुषार्थप्रेरक वाणी के श्रवण का योग अनन्त काल में महापुण्योदय से प्राप्त होता है।** आहाहा! सत्य वाणी सुनने मिलनी... जीवन ऐसे ही चला जाए। आहाहा! हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे-हीराजी महाराज, वे बेचारे क्रिया करे, तत्त्वदृष्टि की कुछ भी समझ नहीं थी। दूसरे का कर सकता है या नहीं, वह भी खबर नहीं। दूसरे की दया पालनी वह धर्म। आहा..! बहुत ऊँचे थे। स्थानकवासी में, 'हीरा अेटला हिर बाकी सुतरना फालका।' उतनी उनकी नर्मी। क्रियाकाण्ड में भी बहुत (चुस्त थे)। परन्तु यह तत्त्व की बात सुनी नहीं थी। आत्मा राग से भिन्न है, शुभराग धर्म नहीं है, यह शब्द सुनने नहीं मिला था। आहाहा! २१ वर्ष उसमें रहे थे न। गुरु की मौजूदगी चार साल रही। (संवत्) १९७० में दीक्षा ली थी, तो १९७४ तक। आहा...! यह शब्द भी सुनने नहीं मिले थे। क्योंकि यह बात ही नहीं है। बात तो दया करो, यह करो, वह करो, ऐसी प्ररूपणा। सुननेवाले सुनकर कुछ करे, सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण (करे)।

यहाँ कहते हैं, **महापुण्योदय से प्राप्त होता है। इसलिए प्रमाद छोड़कर...** आहाहा! अवसर आया है, प्रभु! अब समझ ले। ऐसा अवसर मिलना मुश्किल है। ऐसी सत्य वाणी सुनने मिलनी... आहाहा! है कठिन, है अपूर्व, अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं की ऐसी। आहाहा! ऐसी वाणी भी महापुण्योदय से प्राप्त होती है। **इसलिए प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ**

करो। आहाहा! प्रमाद छोड़कर अन्तर चैतन्यमूर्ति भगवान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसकी पहिचान करो। उसके बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा, प्रभु! आहाहा! बाकी लाखों, करोड़ों का दान करे, करोड़ों रुपये का मन्दिर बनाये, धर्म नहीं है। वह कहीं धर्म नहीं है, शुभभाव है।

अभी अफ्रीका गये थे। उन लोगों ने साठ लाठ इकट्ठे किये। पन्द्रह लाख तो पहले किये थे। पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाने के लिये। मेरे जाने के बाद पैंतालीस लाख इकट्ठे किये। साठ लाख। पच्चीस लाख का मन्दिर बनायेंगे। नैरोबी। करोड़ोंपति बहुत हैं। कहा, बापू! यह करो, परन्तु वह भाव धर्म नहीं है। अशुभ से बचने के लिये थोड़ा शुभ आये। तुम करोड़ों रुपये खर्च करो और पच्चीस लाख का मन्दिर बनाओ, इसलिए धर्म हो जाए और भव कम हो, वह बात नहीं है, बापू! वहाँ के लोग नरम हैं। बड़ी सभा इकट्ठी होती थी। शान्ति से सुनते थे। आहाहा!

एक इन्द्र हुआ, इन्द्र। साढ़े तीन लाख रुपये में और भगवान की जो मुख्य प्रतिमा विराजमान की, उसे विराजमान करनेवाले ने साढ़े पाँच लाख रुपये (दिये)। लक्ष्मीचन्दभाई। साढ़े पाँच लाख रुपया। भगवान को विराजमान करने की प्रतिमा अभी बनेगी, पधरामणी हो गयी हो, मैं तथा तब। परन्तु अभी मन्दिर कच्चा है, नया है। अभी बारह महीने लगेंगे। बड़ा करेंगे। कहा, इन सबमें क्रिया तो पर की होती है। उसमें करनेवाले का भाव कदाचित् शुभ हो, परन्तु उससे धर्म हो, ऐसा नहीं है। यहाँ तो स्पष्ट बात है। अफ्रीका हो या काठियावाड़ हो। आहाहा! वहाँ पैसेवाले बहुत हैं। ४५० तो एक गाँव में करोड़पति हैं। ४५०। और १५ तो अरबपति हैं। वह अरबपति हमारे पास आया था। अमुक बात करता था, श्वेताम्बर था। अपने दिगम्बर मुमुक्षु वहाँ मन्दिर नहीं जाते थे। इसलिए वह बात करता था, महाराज! आपके दिगम्बर मण्डल के लोग वहाँ नहीं आते हैं। हम वहाँ परदेश में गये, उसमें क्या कहना? उसे कहा, बापू! तत्त्वज्ञान समझ में आने के बाद व्यवहार कैसा हो, वह समझ में आयेगा। उतनी बात कही। तत्त्वज्ञान आत्मज्ञान है, वह समझने के बाद व्यवहार कैसा हो, वह बाद में समझ में आयेगा। पहले कुछ भी व्यवहार माने, वह व्यवहार समझ में नहीं आयेगा। वह बेचारा आया था। बाद में मुम्बई भी आया था। अरबपति। ऐसे १५ अरबपति वहाँ हैं। आहाहा! उसमें धूल में क्या है? बापू! ऐसा बड़ा

राजा अनन्त बार हुआ। आहाहा! और मरकर नरक में गया। आहाहा! यह बात दुर्लभ मिली है।

इसलिए प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ करो। सब सुयोग प्राप्त हो गया है,... आहाहा! सब सुयोग अर्थात् जितनी बाह्य सामग्री चाहिए, देव-गुरु-शास्त्र, वाणी मिले हैं, **उसका लाभ ले लो।** उसमें यह लाभ ले-आत्मा का ज्ञान कर ले और उसे समझ ले। आहाहा! बाकी तो सब व्यर्थ है। दुनिया तो प्रशंसा करेगी। पाँच लाख दे तो मानो... ओहोहो! अभी पाँच लाख दिये न। भाई! गंगवाल, नहीं? मिश्रीलाल, मिश्रीलाल गंगवाल। पच्चीस करोड़ है। उसके पास है। वहाँ गये थे। प्रवचन में तो सब आते हैं न। उसने अभी पाँच लाख दिये। पाँच लाख क्या, पाँच करोड़ दे तो कुछ धर्म हो जाए, ऐसा थोड़ा भी नहीं है। उसमें शुभभाव हो तो पुण्य हो और उसमें भी धर्म माने तो मिथ्यात्व हो। अरे..! ऐसी बातें हैं। सुने, सुनते थे। आहा...! पाँच-पाँच लाख रुपया निकाले। एक भगवान की प्रतिमा विराजमान की। लक्ष्मीचंदभाई थे, साढ़े पाँच लाख देकर विराजमान की। अभी हम गये थे। हम थे, तब प्रतिष्ठा हो गयी। काम अभी बहुत बाकी है। सैकड़ों पेटियाँ संगमरमर की आयी हैं। करेंगे। आहा..! बापू! वह शुभभाव है। वह शुभभाव कभी अधिक हो जाए... आहाहा! और वह धर्म का रूप धारण करे, ऐसा नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि, लाभ ले, बापू! सावधान होकर। आहाहा! अपना स्वभाव ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शुद्ध पवित्र दर्शनस्वभाव, ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का सागर प्रभु है। आत्मा अनन्त-अनन्त शक्ति कहो, गुण कहो, स्वभाव कहो, उसका सागर आत्मा है। उसे **सावधान होकर शुद्धात्मा को पहिचानकर...** आहाहा! यह करना है। **शुद्धात्मा को पहिचानकर भवभ्रमण का अन्त लाओ।** तो भवभ्रमण का अन्त आयेगा। नहीं तो चौरासी के अवतार कर-करके हैरान हो गया है। कभी विचार भी नहीं किया कि मैंने अनन्त भव कहाँ किये? किस जगह किये? किस क्षेत्र में, किस काल में, किस स्थिति में (किये)? आहाहा!

नरक में अनन्त बार गया। पहली नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति, वहाँ अनन्त बार गया। दस हजार और एक समय की स्थिति में भी अनन्त बार गया, फिर दो समय की स्थिति में अनन्त बार गया। ऐसे सब सिद्धान्त में लेख हैं। ऐसे एक सागर की स्थिति

तक। समय-समय की अधिकता में अनन्त-अनन्त बार उत्पन्न हुआ। आहाहा! अरे..! उसके दु:ख की बातें क्या करनी? आहाहा! उसकी उष्ण वेदना का एक कण यहाँ लाये तो आसपास के दस-दस योजन के लोग मर जाए। उतनी अग्नि। उसमें प्रभु! तूने लाखों वर्ष, अरबों वर्ष निकाले। अरे..! सागरोपम! सागरोपम निकाले। इसलिए अब सब सामग्री प्राप्त हो गयी है। मनुष्यपना आदि। सत्य श्रवण भी मिल गया है। आहाहा!

सावधान होकर शुद्धात्मा को पहिचानकर... किसकी पहिचान? शुद्धात्मा। पुण्य और पाप के विकल्प से-भाव से रहित। शरीर से तो रहित है। यह तो मिट्टी-धूल है। परन्तु अन्दर में दया, दान का भाव.. दया, दान, भक्ति, पूजा का भाव हो, वह भी राग है, मैल है। उससे भी भिन्न आत्मा है। उसको पहिचानकर... आहाहा! **भवभ्रमण का अन्त लाओ।** आहाहा! ३६८ पूरा हुआ।

चैतन्यतत्त्व को पुद्गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्व को भव का परिचय नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्व को शुभाशुभपरिणति नहीं है, नहीं है। उसमें शरीर का, भव का, शुभाशुभभाव का संन्यास है।

जीव ने अनन्त भवों में परिभ्रमण किया, गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए, तथापि मूल तत्त्व ज्यों का त्यों ही है, गुण ज्यों के त्यों ही हैं। ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ, उससे कहीं उसके सामर्थ्य में न्यूनता नहीं आयी है। आनन्द का अनुभव नहीं है, इसलिए आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हो गया है, घिस नहीं गया है। शक्तिरूप से सब ज्यों का त्यों रहा है। अनादि काल से जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है, आकुलता में रुक गया है, तथापि चैतन्यद्रव्य और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्यों के त्यों स्वयमेव सुरक्षित रहे हैं, उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती।

—ऐसे परमार्थस्वरूप की सम्यग्दृष्टि जीव को अनुभवयुक्त प्रतीति होती है॥३६९॥

३६९। किसी ने लिखा है, यह पढ़ना। किसी ने लिखा है। **चैतन्यतत्त्व को पुद्गलात्मक शरीर नहीं है,...** क्या कहते हैं? भगवान जो अन्दर चैतन्य वस्तु अरूपी

अनन्त गुण का पिण्ड है, उसको यह पुद्गलस्वरूप शरीर नहीं है। चैतन्य को शरीर नहीं है। शरीर जड़ है, उससे चैतन्यप्रभु भिन्न है। आहाहा! चैतन्य जानन प्रकाशमूर्ति-ज्ञान की प्रकाशमूर्ति, ज्ञान का पूर उसका नूर, ज्ञान के तेज का पूर, ऐसा जो यह भगवान आत्मा... आहाहा! वह चैतन्य है और यह शरीर जड़ पुद्गल है। दोनों चीज़ सर्वथा भिन्न है।

यह आत्मा शरीर का कुछ नहीं कर सकता। हाथ हिले आदि सब जड़ की क्रिया, जड़ से (होती है), आत्मा से नहीं। अरे..! कैसे बैठे? पूरा दिन काम ले और कहे कि उससे होता नहीं। प्रभु तो न कहते हैं। अनन्त तीर्थंकरों की पुकार है कि एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व के साथ कोई मेल नहीं है। चाहे तो जड़ हो, चाहे तो चैतन्य हो। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को... आहाहा! छूता नहीं। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। ऐसा पाठ है, समयसार की तीसरी गाथा। आहाहा! शरीर को आत्मा छूता नहीं। (शरीर) जड़ (है), आत्मा चैतन्य। जाति ही पूरी अलग है। अरे..!

चैतन्यतत्त्व को पुद्गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है। नहीं है, दो बार डाला है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप, उसको यह पुद्गल शरीर नहीं है। उसका नहीं है। नहीं है, नहीं है। आहाहा! इत्यादि-इत्यादि कहेंगे.... (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)